

# प्राचीन लेखनकला और उसके साधन

लेखक

आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी

हिन्दी अनुवाद

उत्तमसिंह

प्रकाशक

ला.द. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर

अमदावाद

# प्राचीन लेखनकला और उसके साधन

(हमारी अदृश्य हो रही लेखनकला और उसके साधन)

आगम प्रभाकर  
मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराज

हिन्दी अनुवाद  
उत्तमसिंह



: प्रकाशक :

ला. द. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर  
गुज. यूनि. के पास, नवरंगपुरा,  
अहमदाबाद - ९.

प्राचीन लेखनकला और उसके साधन

आगम प्रभाकर

मुनिश्री पुण्यविजयजी म.

प्रकाशक

ला. द. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर

गुज. यूनि के पास, नवरंगपुरा,

अहमदाबाद-९

प्रथम आवृत्ति, २००९

प्रत : ५००

कीमत : रु. २५/-

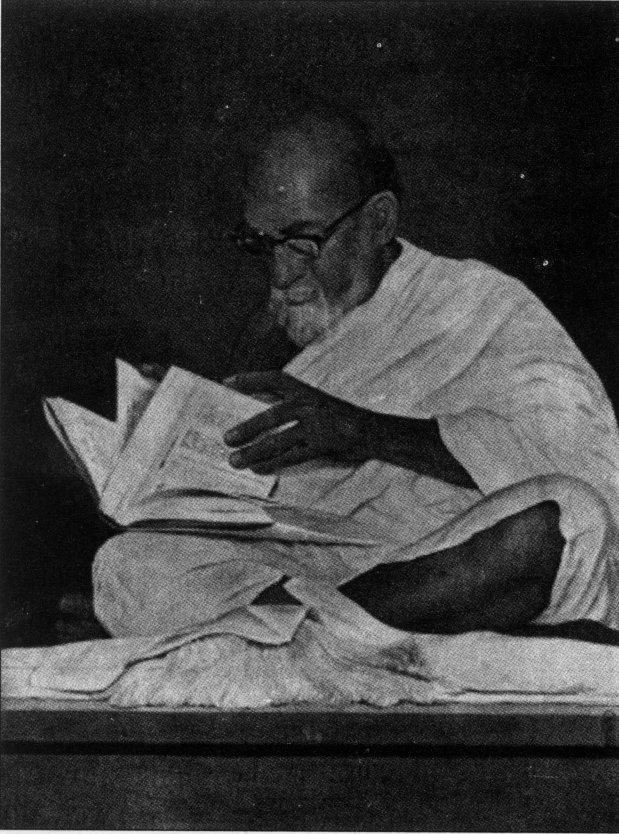
## प्रकाशकीय

हमारे प्राचीन ग्रन्थ अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर हैं। हमारी संस्कृति में ज्ञान का विशिष्ट महत्त्व होने के कारण ये ग्रन्थ सुरक्षित रहे हैं। हमारे देश में प्रत्येक परम्परा ने यथासंभव ग्रन्थों का संरक्षण किया है। इसमें भी जैनों ने विशेष जतनपूर्वक ज्ञानभण्डारों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखा है जिसके कारण आज भी जैन ज्ञानभण्डारों की व्यवस्था आश्चर्यचकित कर देनेवाली और दूसरों को प्रेरणा प्रदान करनेवाली है। इसके पीछे अनेक सदियों की साधना भी जुड़ी हुई है। इस परम्परा के कारण ग्रन्थों के लेखन, संरक्षण एवं संमार्जन की एक विशिष्ट परम्परा का विकास हुआ और तदनुसार ग्रन्थों का संरक्षण होता रहा। परन्तु दुर्भाग्य से आज वह परम्परा अदृश्य हो रही है। लेखनकला लुप्त हो रही है। अतः हम सब का दायित्व बनता है कि हम अपनी लुप्त होती हुई प्रस्तुत कला को बचा लें! इसके लिए आवश्यकता है प्राचीन कला को जानने की। इस क्षेत्र में आगम-प्रभाकर मुनिराज श्री **पुण्यविजयजी** ने महत्त्वपूर्ण काम किया है। उन्होंने पाटण, अहमदाबाद, खंभात तथा जैसलमेर के ज्ञानभण्डारों का अभूतपूर्वरूपेण संरक्षण किया। तदुपरान्त अन्य अनेक भण्डार सुव्यवस्थित किये। वे हस्तप्रतविद्या के निष्णात थे। उन्होंने सं. १९७९ में एक संक्षिप्त और संपूर्ण माहिती सभर लेख 'आपणी अदृश्य थती लेखनकला अने तेनां साधनो' लिखा जो पुरातत्त्व नामक त्रैमासिक में छपा था। वही लेख यहाँ हिन्दी अनुवाद के रूप में मुद्रित किया जा रहा है। आशा है कि हस्तप्रतविद्या के जिज्ञासुओं के लिए यह लेख उपयोगी सिद्ध होगा।

अप्रैल - २००९

जितेन्द्र बी. शाह

इतिहासकार



आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी म.

## प्राचीन लेखनकला और उसके साधन

पाश्चात्य यान्त्रिक आविष्कार के युग में अनेक कलाओं को खोने के बाद उनके पुनरुद्धार हेतु विविध प्रयत्न करने के बावजूद हम तादृशी सफलता प्राप्त नहीं कर सके हैं, मुद्रणकला के प्रभाव के कारण अदृश्य हो रही लेखनकला के संबन्ध में भी न्यूनता रूपी प्रसंग हमारे सामने आने लगे हैं। आज से लगभग पच्चीस वर्ष पहले गुजरात एवं मारवाड़ में लहियाओं के वंश (परिवार) कुटुम्ब विद्यमान थे,<sup>१</sup> जो परम्परानुसार पुस्तक-लेखन का ही व्यवसाय करते थे। परन्तु मुद्रणकला के युग में उनसे पुस्तकें लिखानेवालों की संख्या घटने के कारण उन्होंने अपनी संतति को अन्य उद्योगों की तरफ मोड़ दिया। परिणाम यह आया कि, जिन लहियाओं को एक हजार श्लोक लिखने हेतु, दो या तीन रुपिया, अच्छे से अच्छा लहिया हो तो, चार रुपिया दिये जाते थे, और वे जैसी सुन्दर लिपि तथा सम्मुख विद्यमान आदर्श लेख सदृश-आदर्श नकल लिखते थे वैसी ही शुद्ध, सुन्दर आदर्श प्रति तैयार करने हेतु आज हम एक हजार श्लोक लेखन हेतु दस से पन्द्रह रुपिया दें तो भी तादृश लेखक कोई विरला ही मिल सकता है; और ताड़पत्रीय पुरातन प्रति पर से देखकर

लिप्यान्तर करनेवाले तो भाग्य से ही मिल सकते हैं ! शायद न भी मिलें । लहियाओं के इस भयंकर दुष्काल में लेखनकला और उसके साधनों का लुप्त होना स्वाभाविक है । इस प्रकार अनेक शताब्दियों पर्यन्त भारतवर्ष द्वारा तथा अन्तिम शताब्दियों में जैन<sup>२</sup> मुनियों द्वारा जीवित रखी जा सकनेवाली लेखनकला आज लगभग नाश के कगार पर पहुँच गई है ।

इस विलुप्तीकरण के कारण कला संबन्धी माहिती भी लुप्त होती जा रही है । उदाहरण स्वरूप, ताड़पत्र पर लिखने की विधा लगभग विलुप्त हो गई है । ताड़पत्र पर उपस्थित चिकनाई तथा चमक स्याही को टिकने नहीं देती है । उस चिकनाई को अलग करने की विधि मिल नहीं सकती । ऐसी स्थिति में इस कला के साधनों के विषय में जो भी माहिती मिले उसे लिख लेना चाहिए । इस कला के भावि इतिहासकारों के लिए उपयोगी सिद्ध हो इस दृष्टि से मैंने प्राप्त हकीकतों का इस लेख में संग्रह किया है ।

वर्णन की सुगमता हेतु लेखनकला के साधनों का मैं निम्नोक्त प्रमाण में तीन विभागों में निरूपण करूँगा : (१) ताड़पत्र, कागज आदि, (२) कलम, पीछी (पंख) आदि तथा (३) स्याही आदि । इसके उपरान्त पुस्तकों के प्रकार, लहियाओं के रीति-रिवाज, टेव इत्यादि की माहिती दी गई है ।

## १. ताड़पत्र, कागज आदि

**ताड़पत्र**—ताड़ के वृक्ष दो प्रकार के होते हैं : (१) खरताड़ और (२) श्रीताड़। गुजराती भूमि पर जो ताड़ के वृक्ष आज विद्यमान हैं वे खरताड़ किस्म के हैं। इस वृक्ष के पत्र स्थूल, लंबाई-चौड़ाई में छोटे एवं नये होने पर भी सहज टकर या धक्का लगने पर टूट जाने वाले अर्थात् बरड़ होते हैं। इस लिए पुस्तक लेखन में इनका उपयोग नहीं किया जाता। श्रीताड़ के वृक्ष मद्रास, ब्रह्मदेश आदि में प्रचुर मात्रा में होते हैं। इनके पत्ते श्लक्ष्ण, लंबे, चौड़े<sup>३</sup> तथा सुकुमार होने के कारण मोड़ने पर भी टूटने का भय नहीं रहता है<sup>४</sup>। कुछ ताड़पत्र श्लक्ष्ण तथा लंबे-चौड़े होने के बावजूद थोड़े बरड़ (कड़क) होते हैं, लेकिन उनके स्थायित्व के बारे में शंका करने की आवश्यकता नहीं रहती। इन श्रीताड़ के पत्रों का ही पुस्तक लिखने हेतु उपयोग किया जाता था और आज भी उन-उन देशों में पुस्तक लिखने हेतु इनका उपयोग किया जाता है।

**कागज**—जिस प्रकार आजकल भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न जाति के कागज बनते हैं, उसी प्रकार पुरातनकाल में तथा अद्य पर्यन्त हमारे देश के दरेक विभाग में जरूरत एवं खपत अनुसार भूंगळिया, साहेबखानी आदि अनेक प्रकार के कागज बनाये जाते थे और उनमें से जिसे जो अच्छे तथा टिकाऊ लगते उनका वे पुस्तक लिखने हेतु उपयोग करते थे। परन्तु आजकल हमारे गुजरात में पुस्तक लेखन हेतु अहमदाबादी तथा काश्मीरी कागज का ही उपयोग किया जाता है। इसमें भी अहमदाबाद में बननेवाले कागज का उपयोग प्रमुखरूप से किया जाता है, क्योंकि काश्मीर में जो अच्छे और टिकाऊ कागज बनते हैं उनको वहाँ के स्टेट द्वारा अपने दफ्तरी काम हेतु ले



लिया जाता है। अतः विशेष प्रयत्न द्वारा ही मात्र अमुक मात्रा में कागज प्राप्त किया जा सकता है। यह कागज रेशम के समान इतना अधिक मजबूत होता है कि खूब जोर से खींचे जाने पर भी अचानक फटता नहीं है।

यहाँ पर इतना ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तक लेखन हेतु जो कागज आते हैं वे वहाँ से ही घुटाई करके आते हैं; तथापि शरद हवा लगने के कारण कागज की घुटाई उतर जाती है। घुटाई उतरने के बाद उस पर लिखे हुए अक्षर टूट जाते हैं, अथवा स्याही टिक नहीं सकती। अतः उन कागजों को सफेद फिटकरी के पानी में से निकालकर सुखाना पड़ता है, तथा थोड़ा गीला-सूका होने पर उसे अकीक, कसोटी, अगर आदि प्रकार के घुट्टा द्वारा घोंटते हैं, जिससे भेज संबन्धी दोष दूर हो जायें।

विलायती तथा हमारे देश में बनने वाले कुछ ऐसे कागज जिनका गूदा (मावा) तेजाब अथवा स्पिरिट द्वारा साफ किया जाता है, उन कागजों का सत्त्व, अस्तित्व पहले से ही नष्ट हो जाने के कारण चिरस्थायी नहीं होते, अतः पुस्तक लेखन हेतु उनका उपयोग नहीं किया गया। ऐसे विविध प्रकार के विलायती कागजों का अनुभव हमने किया है कि जो कागज आरम्भ में श्वेत, मजबूत एवं श्लक्ष्ण दिखाई देने के बावजूद अमुक वर्ष बीतने के बाद देखने में श्याम तथा मोड़ते ही टूट जानेवाले हो जाते हैं। यह दोष हम प्रत्येक जात के विलायती कागजों को नहीं दे सकते हैं।

**कपड़ा**—गेहूँ के आटे की लेही बनाकर उसे कपड़े पर लगाया जाता है। सूखने के बाद उस कपड़े को अकीक या अगर आदि किसी भी प्रकार के घुट्टे द्वारा घोंटने पर वह कपड़ा लिखने

योग्य बन जाता है। पाटण संघ के भण्डार में, अथवा जो वखतजी की शेरी में भण्डार है उसमें 'संवत् १३५३ भाद्रवा सुदि १५ रवौ उपकेश गच्छीय पं० महिचन्द्रेण लिखिता पु०' ऐसा अन्तिम उल्लेख (पुष्पिका) वाली कपड़े पर लिखी हुई एक पुस्तक (हस्तप्रत) है। कपड़े का उपयोग पुस्तक लिखने के बजाय मंत्र-विद्या आदि के पट लिखने, चित्रित करने हेतु अधिक किया जाता था और आज भी किया जाता है। आज इसका स्थान ट्रेसिंग क्लोथ ने ले लिया है।

**भोजपत्र**—इसका उपयोग प्रधानतया मन्त्रादि लिखने हेतु किया जाता था और आज भी किया जाता है। 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' में भोजपत्र पर लिखी हुई पुस्तकों (हस्तप्रतों) का भी उल्लेख किया गया है।

कई विद्यमान पुस्तक-भण्डारों की तरफ दृष्टिपात करने पर इतना तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि पुस्तक लेखन हेतु ताड़पत्र तथा कागज का जितना अधिक उपयोग किया गया है उतना किसी दूसरी वस्तु का नहीं किया गया है। इसमें भी विक्रम की बारहवीं शताब्दी पर्यन्त तो पुस्तक लेखन हेतु ताड़पत्रों का ही प्रयोग हुआ है।

## २. कलम आदि

**कलम**—कलम बनाने के लिए अनेक प्रकार के 'बरू' (एक प्रकार की घास या पेड-पौधे, जिनके डण्ठल को छीलकर लिखने योग्य कलम बनाते थे ।) आदि प्रयुक्त होते थे और आज भी होते हैं । यथा तजियां बरू, कळों बरू, बाँस के बरू आदि । इनमें तजियां बरू तज-पत्र की तरह पोला होने के कारण 'तजियां' नाम से जाना जाता है । यह स्वभाव से बरड़ (तुरन्त टूट जानेवाला) होता है, तथापि इसमें एक गुण यह है कि इससे कितना भी लिखें तो भी इसकी नौक खराब नहीं होती है । इस अपेक्षा से कळों बरू दूसरे स्थान पर गिना जाता है । बाँस का बरू भी अच्छा माना जा सकता है । लेखिनी के गुण-दोष विषयक निम्नोक्त दोहा प्रचलित है :

'माथे ग्रंथी मत ( मति ) हरे, बीच ग्रंथि धन खाय;  
चार तसुनी लेखणे, लखनारो कट जाय ।' ॥१॥

'आद्यग्रन्थिर्हरेदायुः, मध्यग्रन्थिर्हरेद् धनम् ।  
अन्त्यग्रन्थिर्हरेत् सौख्यं, निर्ग्रन्थिलेखिनी शुभा ॥१॥'

**पीछी ( पंख )**—इसका उपयोग पुस्तक संशोधन हेतु किया जाता है । यथा 'ष' का 'प', 'ब' का 'व', 'म' का 'न' करना हो, किसी अक्षर अथवा पंक्ति को हटाना हो अथवा एक अक्षर के स्थान पर दूसरा अक्षर लिखना हो तब 'हरिताल' अथवा 'सफेदा' को उस स्थान पर लगाकर दूसरा अक्षर बन जाता है ।

वैसे तो आजकल अनेक प्रकार की—महीन, मोटी, छोटी, बड़ी आदि आवश्यकतानुरूप पीछी मिल सकती हैं, अतः उन सब का विस्तृत परिचय देने की आवश्यकता नहीं है । तथापि

इतना ज्ञान जरूरी है कि हमारे पुस्तक संशोधन कार्य में गिलहरी की पूँछ के बालों को कबूतर की पाँख के आगेवाले भाग में पिरोकर बनाई गई पीँछी अधिक सहायक सिद्ध होती है। क्योंकि ये बाल कुदरती रूप से ही इतने व्यवस्थित होते हैं कि इन्हें अलग से व्यवस्थित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और अचानक सड़ते अथवा टूटते भी नहीं हैं। इन बालों को कबूतर की पाँख में पिरोकर देखने पर संपूर्ण विधि प्रत्यक्षरूपेण समझ में आ जाती है।

**जुजबल**—कलम द्वारा लाइन बनाने पर थोड़ी ही देर में कलम घिस जाती है, अतः लाइन खींचने हेतु जुजबल का प्रयोग किया जाता था। आज भी मारवाड़ में कई स्थानों पर इसका चलन है। यह लोहे का होता है और इसका आकार आगे से चिमटे के समान होता है।

ब्रह्मदेश, मद्रास आदि जिन-जिन प्रदेशों में ताड़पत्र को गोदकर, कुतरकर लिखने का रिवाज है, वहाँ कलम के स्थान पर लोहे के नुकीले सुई सदृश तार, सरिया का उपयोग किया जाता है।

### ३. स्याही आदि

ताड़पत्रीय काली स्याही—आजकल ताड़पत्र पर लिखने का रिवाज लुप्तप्रायः हो गया है, अतः इसकी स्याही बनाने का यथेष्ट स्पष्ट विधान भी नहीं मिलता है। लेकिन कुछ स्थलों पर जो अलग-अलग स्पष्ट अथवा अस्पष्ट उल्लेख प्राप्त हुए हैं, वे निम्नोक्त हैं :

प्रथम प्रकार :

सहवर-भृङ्ग-त्रिफलाः, कासीसं लोहमेव नीली च ।  
समकज्जलबोलयुता, भवति मषी ताड़पत्राणाम् ॥१॥

व्याख्या—सहवरेति कांटासेहरीओ (कढ़ाई, परात) । भृङ्गेति भांगुरओ । त्रिफला प्रसिद्धैव । कासीसमिति कसीसम्, येन काष्ठादि रज्यते । लोहमिति लोहचूर्णम् । नीलिति गलीनिष्पादको वृक्षः तद्रसः । रसं विना सर्वेषां उत्कल्य क्वाथः क्रियते, स च रसोऽपि समवर्तितकज्जलबालयोर्मध्ये निक्षिप्यते, ततस्ताड़पत्रमषी भवतीति ॥

यहाँ कौन सी वस्तु कितने प्रमाण में लें यह स्पष्ट नहीं होता है। क्योंकि इसमें सभी वस्तुओं को इकट्ठा करने के बाद क्या करना है इसका भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है; लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि तांबे की कढ़ाई में डाल कर इन सब वस्तुओं को खूब घोंटना चाहिए जिससे प्रत्येक वस्तु एकरस हो जाये।

द्वितीय प्रकार :

“कज्जलपाडगंबोलं, भुमिलया पारदस्स लेसं च ।  
उसिणजलेण विधसिया, वडिया काऊण कुट्टिज्जा ॥१॥

तत्तजलेण व पुणओ, धोलिज्जंती द्ढं मसी होइ ।  
तेण विलिहिया पत्ता, वच्चह रयणीइ दिवसु व्व ॥२॥”

“कोरडए विसरावे, अंगुलिया कोरडम्मि कज्जलए ।  
मद्दह सरावलग्गं, जावं चिय चि( क्क )गं मुअइ ॥३॥

पिचुमंदगुंदलेसं, खायरगुंदं ब बीयजलमिस्सं ।

भिज्जवि तोएण द्ढं, मद्दह जातं जलं सुसइ ॥४॥

इति ताडपत्रमध्याम्नायः ॥”

इन आर्याओं का जिस पन्ने पर से मैंने लिप्यान्तरण किया है, उसमें आँकड़े सलंग रखे गये हैं। इनका अर्थ देखने पर पूर्व की दो आर्या समान प्रकार की और अन्तिम दो आर्या समान प्रकार की हों ऐसा लगता है। सामान्यतः इन आर्याओं का अर्थ हम निम्नप्रकार कर सकते हैं—

“कज्जलप्रायेण—काजल के समान (?) बोळ-हीराबोळ और भूमिलता (?) तथा पारे का कुछ अंश, (इन समस्त वस्तुओं को) गरम पानी में (मिलाकर सात दिन तक अथवा अधिक दिनों तक) घोंटें। (फिर) गोलियाँ बनाकर (सुखा लें। सूखने के बाद) कूटें—चूर्ण करें। १.’ (जब जरूरत पड़े तब उस चूर्ण को) गरम पानी में घोंटने पर वह (लिखने योग्य) स्याही बन जाती है। उस स्याही द्वारा लिखे हुए पत्रों को (अक्षरों) को रात्रि में (भी) दिन की तरह वाँच सकते हैं। २.”

“कोरे काजल को कोरी मिट्टी की बालु (रेती) में डालकर जब तक उसकी चिकनाई न मिटे तब तक अंगुलियों द्वारा बालु के साथ मर्दन करें—घोंटें। (ऐसा करने पर काजल की चिकनाई को बालु खींच लेगी<sup>६</sup>।) ३.’ (काजल और) नीम अथवा खेर के गोंद को बियाजन-बियारस के पानी में मिश्रित

करके, भिगोकर खूब घोंटें, और जब तक पानी सूखे नहीं तब तक घोंटते रहें । (फिर उसकी टिक्की बनाकर सुखा लें; आदि उपरोक्तानुसार जानें ।) ४.”

**तृतीय प्रकार :**

निर्यासात् पिचुमन्दजाद् द्विगुणितो बोलस्ततः कज्जलं  
संजातं तिलतैलतो हुतवहे तीव्र तपे मर्दितम् ।

पात्रे शूल्वमये तथा शन (? ) जलैलाक्षारसैर्भाषितः  
सद्ब्रह्मातकभृङ्गराजरसयुक् संयुक्त सोऽयं मषी ॥१॥

“नीम के “निर्यासात्” अर्थात् गूदा अथवा गौंद से दुगुना बीजाबोल लें । उससे दुगुना तिल के तेल से बनाया हुआ काजल लें । (इन सब को) ताँबे के पात्र में डालकर तीव्र अग्नि पर चढ़ाकर उसमें धीरे-धीरे लाक्षारस डालें और ताँबे की परत चढ़े हुए घोंटा द्वारा घोंटते रहें । फिर गौमूत्र में भिगोकर रखे हुए भीलामा के गर्भ (गूदा) को घोंटा के नीचे लगाकर स्याही को घोंटें । उसमें भांगरे का रस भी मिलाएँ । इस प्रकार (ताड़पत्र पर लिखने योग्य) मषी-स्याही तैयार हो जाती है”<sup>५</sup>।

ध्यान रहे कि इसमें लाक्षारस मिश्रित होता है अतः काजल को गौमूत्र में भिगोएँ नहीं । अन्यथा लाक्षारस के फटने पर स्याही खराब हो जायेगी ।

ब्रह्मदेश, मद्रास आदि जिन-जिन देशों में ताड़पत्रों को कुरेदकर (गोदकर) लिखने का रिवाज है वहाँ स्याही के स्थान पर नारियल के ऊपर की परत अथवा बादाम के छिलकों को जलाकर उनकी राख को तेल में मिलाकर उपयोग में लिया जाता है । अर्थात् कुरेदकर (गोदकर) लिखे हुए ताड़पत्रों पर

उस राख सदृश मिश्रण को लगाकर कपड़े से साफ कर दिया जाता है । तब कुरेदकर लिखा हुआ भाग काला होकर पूरा कागज सदृश दिखाई देता है ।

### कागज पर लिखनेवाली स्याही :

१. “जिनता काजळ बोळ, तेथी दूणा गुंद झकोळ;  
जो रस भांगरानो भळे, अक्षरे अक्षरे दीवा बळे ।” ॥१॥”
२. “मध्यर्धे क्षिप सदगुन्दं, गुन्दार्धे बोलमेव च  
लाक्षां-बीयारसेनोच्चैर्मर्दयेत्<sup>१</sup> ताप्रभाजने ॥१॥”
३. “बीआ बोल अनई लक्खारस, कज्जल वज्जल (?) नई  
अंबारस ।  
भोजराज मिसि नीपाई, पानउ फाटई मिसि नवि जाई ।” ॥१॥
४. “काजल टांक ६, बीजाबोल टांक १२, खेर का गोंद टांक  
३६, अफीण टांक ०॥, अलता पोथी टांक ३, फिटकरी  
कच्ची टांक ०॥, निंबना घोटसु दिन सात त्रांबना पात्रमां  
घूंटवी ।” (नीम के घोटे द्वारा सात दिनों तक तांबे के  
पात्र में घोंटें ।)”
५. “कत्था के पानी को काजल में डालकर खूब घोंटें । काथो  
नांदोदी, जे काळो आवे छे, ते समजवो ।” (कत्थे से  
बाहर निकलकर जो काला रंग प्राप्त होता है उसे स्याही  
समझें)।”
६. “हरडा तथा बहेडा का पानी बनाकर उसमें हीराकसी  
मिलाने पर काली स्याही प्राप्त होती है ।”

कागज पर लिखने में सहायक स्याही के उपरोक्त छः प्रकारों में से पुस्तकों को चिरायुष्क बनाने हेतु प्रथम प्रकार ही



सर्वोत्तम तथा अनुकरणीय है। इसके अलावा (२-३-४) ये मध्यम प्रकार हैं। इन तीन प्रकारों से बनी हुई स्याही पहले प्रकार के बजाय पक्की तो होती है परन्तु यह उस पुस्तक को तीन शताब्दी के समयान्तराल में ही मृतवत् कर देती है। अर्थात् पुस्तक को खा जाती है। अतः इनका उपयोग नहीं करना ही अधिक उचित माना जाता है और अन्तिम दो प्रकार (५-६) ये तो कनिष्ठ तथा वर्जनीय भी हैं, क्योंकि इस विधिपूर्वक निर्मित स्याही द्वारा लिखित पुस्तक एक ही शताब्दि में यमराज को प्यारी हो जाती है। परन्तु यदि थोड़े समय में ही रद्द करके फैंक देने जैसा कुछ लिखना हो तो इन दो प्रकारों (५-६) के समान सरल एवं सस्ता उपाय और कोई भी नहीं है।

**टिप्पणा की स्याही :**

“बोलस्य द्विगुणो गुन्दो, गुन्दस्य द्विगुणा मषी ।  
मर्दयेत् यामयुगं तु, मषी वज्रसमा भवेत् ॥१॥”

काली स्याही हेतु ध्यान में रखनेवाली बातें—

“कज्जलमत्र तिलतैलतः संजातं ग्राह्यम् ।”

“गुन्दोऽत्र निम्बसत्कः खदिरसत्को बव्वूलसत्को वा ग्राह्यः ।  
धवसत्कस्तु सर्वथा त्याज्यः मषीविनाशकारित्वात् ।”

“मषीमध्ये महाराष्ट्रभाषया ‘डैरली’ इति प्रसिद्धस्य रिङ्गणीवृक्षस्य वनस्पतिविशेषस्य फलरसस्य प्रक्षेपे सति सतेजस्कमक्षिकाभावादयो गुणा भवन्ति ।”

इसके अलावा स्याही बनाने की विधि में जहाँ-जहाँ गोंद का उपयोग बताया गया है वहाँ खेर के गोंद का प्रावधान है। यदि बावळ (बबूल) अथवा नीम के गोंद का प्रयोग करना हो तो चौथा हिस्सा लें, क्योंकि खेर के गोंद के बजाय इनमें चिकनाई की मात्रा

अधिक होती है। यहाँ विशेष ध्यान रखनेवाली बात यह है कि लाख, कत्था हीराकसी का जिस स्याही में प्रयोग किया गया हो ऐसी किसी भी स्याही का उपयोग पुस्तकलेखन हेतु न करें।

उपरोक्त लेख में वर्णित उल्लेखों में क्वचित भाषा विषयक अशुद्धि दिखाई पड़े तो वाचकगण विशेष ख्याल न करें इतना अनुरोध है।

### सोनेरी-रूपेरी स्याही :

सर्वप्रथम साफ-सुथरे गैहूँ के गूदे का पानी बनाएँ। फिर उसे काँच अथवा दूसरे किसी अन्य पदार्थ द्वारा निर्मित रकाबी (पात्र) में चुपडें (लेप करें) और सोना अथवा चाँदी की जो स्याही बनानी हो उसका वरक लेकर लेप पर लगाएँ और अँगुली की सहायता से घोंटें। इस प्रकार थोड़ी ही देर में उस सोने अथवा चाँदी के वरक का मिश्रण बन जायेगा। तदनन्तर पुनः गोंद लगाकर वरक लगाते रहें और घोंटते रहें। इस प्रकार तैयार मिश्रण में शक्कर (मिश्री) का पानी डालकर हिलाएँ। जब मिश्रण ठण्डा होकर नीचे बैठ जाए तब उसमें बचा हुआ पानी धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। इस प्रकार तीन-चार बार करने पर जो सोना-चाँदी का मिश्रण प्राप्त होता है उसे ही तैयार सुनहरी स्याही समझें।

इसमें मिश्री का पानी डालने पर गोंद की चिकनाई का नाश होता है। और सोने-चाँदी के तेज (चमक) का ह्रास नहीं होता है।

यदि एक साथ ही अधिक मात्रा में सोने-चाँदी की स्याही तैयार करनी हो तो गोंद के पानी और वरक को खरल (हुमानदस्ता, ओखल) में डालते जायें और घोंटते रहें और फिर

मिश्री का पानी डालकर साफ करने की विधि उपरोक्तानुसार ही समझें ।

ध्यान रहे कि खरल (ओखल) अच्छी श्रेणी का होना चाहिए । किसी वस्तु को घोंटते वखत यदि खरल घिसता हो तो उसमें से छोटी-छोटी कंकरीट स्याही में मिल जाने पर स्याही दूषित हो जायेगी ।

**हिंगळोक ( हिंगोलक, ईंगुर )**—कच्चा हिंगळोक, जो गांगडा (देला, डली) सदृश होता है जिसमें से वैद्य लोग पारा निकालते हैं । इसे ओखल में डालकर मिश्री का पानी मिलाकर खूब घोंटें । फिर उसके ठण्डा होने पर उस पर जमा हुए पीले रंग के पानी को अलग कर दें । पुनः उसमें मिश्री का पानी डालकर खूब घोंटें और ठण्डा होने के बाद ऊपर आए हुए पीले रंग के पानी को पूर्ववत् अलग कर दें । इस प्रकार जब तक पीले रंग का अंश दिखाई दे तब तक करते रहें । ध्यान रहे कि ऐसा दो-चार बार करने से ही नहीं हो जाता है बल्कि बीस-पच्चीस बार इस प्रकार हिंगोलक हो धोने पर शुद्ध-लाल सुर्ख सदृश हिंगोलक (हिंगळोक) हो जाता है और यदि अधिक मात्र में हो तो और भी अधिक बार धुलना पडता है । उस शुद्ध हिंगोलक (हिंगळोक) में मिश्री का पानी तथा गोंद का पानी डालें और घोंटते रहें । इस बार इतना ध्यान अवश्य रखें कि गोंद की मात्रा अधिक न हो । इस हेतु बीच-बीच में ध्यानपूर्वक परीक्षण करते रहें, अर्थात् एक कागज पर अंगुलि की सहायता से उस हिंगोलक की दो-चार बूँद डालकर उस कागज को हवावाले स्थान पर (पानी का मटका रखनेवाले स्थान पर अथवा हवा-भेज, नमी वाले घडे में) मोड़कर रख दें । यदि वह कागज चिपके नहीं तो गोंद की मात्रा अधिक नहीं है ऐसा समझें और नाखून द्वारा कुरेदने पर आसानी

से उखड़ जाये तो गोंद डालने की आवश्यकता है ऐसा समझें । मिश्री का पानी एक-दो बार ही डालें । इस प्रकार तैयार हिंगोलक (हिंगळोक) का उपयोग लाल स्याही के रूप में किया जाता है ।

**हरिताल**—दगड़ी और वरगी इन दो प्रकार की हरितालों में से हमारे पुस्तक संशोधन कार्य में वरगी हरिताल उपयोगी है । इसे तोड़ने पर बीच में सुनहरी वरक सदृश पत्री दिखाई देती है; अतः इसे वरगी हरिताल नाम से जाना जाता है । इस हरिताल को ओखल में डालकर खूब महीन पीसें और मिश्रण को मोटे कपड़े में से छानें । पुनः ओखल में डालकर खूब पीसें । फिर उसमें गोंद का पानी डालते रहें और पीसते रहें । गोंद की मात्रा अधिक न हो इस लिए बीच-बीच में हिंगोलक (हिंगळोक) का परीक्षण करते रहें ।

**सफेदा**—रंगाई-पुताई के लिए जो सूखा सफेदा आता है, उसमें गोंद का पानी डालकर खूब घोंटने पर तैयार सामग्री का उपयोग संशोधन हेतु किया जाता है ।

**अष्टगन्ध**—मंत्राक्षर लिखने हेतु इसका उपयोग किया जाता है । इसमें— १. अगर, २. तगर, ३. गोरोचन, ४. कस्तूरी, ५. रक्तचन्दन, ६. चन्दन, ७. सिन्दूर तथा ८. केसरी—इन आठ द्रव्यों का मिश्रण होने के कारण अष्टगन्ध कहा जाता है ।

**यक्षकर्म**—इसका उपयोगी भी मन्त्रादि लेखन हेतु किया जाता है । १. चन्दन, २. केसर, ३. अगर, ४. बरास, ५. कस्तूरी, ६. मरचकंकोल, ७. गोरोचन, ८. हिंगळोक, ९. रतंजणी, १०. सोने के वरक और ११. अंबर—इन ग्यारह द्रव्यों के मिश्रण द्वारा निर्मित होता है ।

उपरोक्तानुसार विधिपूर्वक तैयार स्याही हिंगळोक, हरिताल, सफेदा आदि मिश्रण को एक थाली में तेल चुपडकर उसमें छोटे-छोटे टुकडे करके रखें। सूखने के बाद आवश्यकता पडने पर इन टुकडों को पानी में मिलाकर स्याही बनाई जा सकती है।

**सोने-चाँदी की स्याही द्वारा लिखने का विधान :**  
सुनहरी तथा चाँदी की स्याही द्वारा लिखे जानेवाले पन्नों को काला, ब्ल्यू, लाल, जामली आदि रंगों से रंग दिया जाता है। और फिर सुनहरी स्याही द्वारा लिखना हो तो हरिताल<sup>११</sup> और चाँदी की स्याही से लिखना हो तो सफेदा द्वारा अक्षर लिखकर उन पर सोने-चाँदी की स्याही को पीछी (पक्षियों की पंख) द्वारा भरें (हरिताल-सफेदा के अक्षर गीले हों तब ही उन पर सोने-चाँदी की स्याही का लेप करें।) सूखने के बाद उन पत्रों को अकीक अथवा कसोटी के घुट्टे द्वारा घोंटने पर अक्षर सुनहरी स्याही किए हुए गहनों की तरह तेजयुक्त चमकीले दिखाई देंगे।

### परचूरण : ( परिशिष्ट )

**पुस्तक के प्रकार**—याकिनी महत्तरासूनु श्रीमान् हरिभद्रसूरि ने दशवैकालिकसूत्र की प्रथम गाथा की टीका में 'संजम' पद की व्याख्या करते हुए पाँच प्रकार की पुस्तकों का 'उक्तं च' कह कर उल्लेख किया है :

गंडी कच्छवी मुट्टी, संपुडफलए तहा छिवाडी य ।

एयं पुत्थयपणयं, वक्ख्राणमिणं भवे तस्स ॥१॥

बाहल्लपुहत्तेहिं, गंडीपृत्थो उ तुल्लगो दीहो ।

कच्छवि अंते तणुओ, मझे पिहुलो मुणोयव्वो ॥२॥

चउरंगुलदीहो वा, वट्टागिइ मुट्टिपुत्थगो अहवा ।  
 चउरंगुलदीहो च्चिय, चउरंसो होइ विन्नेओ ॥३॥  
 संपुडगो दुगमाई, फलगा वोच्छं छिवाडिमेत्ताहे ।  
 तणुपत्तूसियरूवो, होइ छिवाडी बुहा बेत्ति ॥४॥  
 दीहो वा हस्सो वा, जी पिहुलो होइ अप्पबाहल्लो ।  
 तं मुणियसमयसारा, छिवाडिपोत्थं भणंती ह ॥५॥

**शब्दार्थ—** १. गंडी, २. कच्छपी, ३. मुष्टि, ४. संपुटफलक तथा ५. सृपाटि—पुस्तक पंचक । इनकी व्याख्या निम्न प्रकार है :  
 १. जो बाहल्य अर्थात् मोटाई तथा पृथुकत्व अर्थात् चौड़ाई में समान एवं दीर्घ-लंबी हो वह गंडी पुस्तक । २. जो अन्त में तनु-सकरी और मध्य में चौड़ी हो उसे कच्छपि पुस्तक समझें । ३. जो चार अंगुल लम्बी और गोलाकार हो वह मुष्टि पुस्तक । अथवा जो चार अंगुल दीर्घचतुस्त्र हो उसे (मुष्टि पुस्तक) समझें । ४. दो आदि फलक (?) हों वह संपुष्ट फलक । अब सृपाटि का उल्लेख करेंगे । तनुपत्र—छोटे पन्ने और ऊँचाई में अधिक हो उसे पण्डितगण सृपाटि पुस्तक कहते हैं । ५. जो छोटी-बड़ी हो और चौड़ाई में कम हो उसे(भी) आगम-रहस्यज्ञ सृपाटि पुस्तक कहते हैं ।

**त्रिपाट ( त्रिपाठ )**—जिस पुस्तक के मध्यभाग में बड़े अक्षरों में मूल सूत्र अथवा श्लोक लिखकर, छोटे अक्षरों में ऊपर-नीचे के भाग में टीका लिखी जाती है वह पुस्तक बीच में मूल और ऊपर-नीचे टीका इस प्रकार तीन विभागों में लिखे जाने के कारण त्रिपाट (त्रिपाठ) नाम से जानी जाती है ।

**पंचपाट ( पंचपाठ )**—जिस पुस्तक के मध्य में बड़े अक्षरों में मूल सूत्र अथवा श्लोक लिखकर, छोटे अक्षरों में ऊपर-नीचे दोनों तरफ के मार्जिन में टीका लिखी जाती है वह

पुस्तक बीच में मूल, ऊपर-नीचे तथा दोनों तरफ के मार्जिन में टीका इस प्रकार पाँच विभागों में लिखी जाने के कारण पंचपाठ कही जाती है ।

**सूढ़**—जो पुस्तक हाथी की सूढ़ की तरह सलंग किसी भी प्रकार का विभाग किये बिना-लिखी जाये उसे सूढ़ कहते हैं ।

**त्रिपाठ-पंचपाठ**—सटीक ग्रन्थ ही त्रिपाठ-पंचपाठ रूप में लिखे जाते हैं । हमारी पुरातन पुस्तकें सूढ़ रूप में ही लिखी गई हैं । त्रिपाठ-पंचपाठ लिखने का रिवाज विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ होगा, ऐसा विद्यमान पुस्तक-भण्डारों के आधार पर कहा जा सकता है ।

### लहियाओं का कुछ अक्षरों के प्रति अंधविश्वास :

लहिया पुस्तक लिखते-लिखते अचानक खड़ा होना हो अथवा उस दिन के लिए या अमुक समय के लिए लेखनकार्य बन्द करना हो तो “स्वर, क-ख-ग-ङ-च-छ-ज-झ-ठ-ढ-ण-थ-द-ध-न-फ-भ-म-य-र-ष-स-ह-क्ष-ज्ञ” आदि अक्षरों पर नहीं रुकते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि— “क कटजाये, ख खा जाये, ग गरम होवे, च चल जाये, छ छटक जाये, ज जोखम दिखाये, ठ ठाम न बैठे, ढ ढली पडे (गिर जाये), ण हाण करे, थ थीरता करे, द दाम न देखे, ध धन छांडे, न नठारो, फ फटकारे, भ भमावे (भ्रमित करे), म माठो, य फेर न लीखे, र रोवे, ष खांचाळो, स संदेह धरे, ह हीणो, क्ष क्षय करे, ज्ञ ज्ञान नहीं ।” अर्थात् “घ, झ, ट, ड, त, प, ब, ल, व, श” अक्षरों पर विराम लेते हैं (रुकते हैं); क्योंकि घ घसडी लावे (खींचकर ले आये), झ झट करे, ट टकावी राखे (टिकाए रखे), ड डगे नहीं (डिगे नहीं), त तरत लावे (तुरन्त लाए), प परमेशररो (परमेश्वर का), ब बळियो (बलवान), ल लाये, व वावे (बोए), श शान्ति करे” ऐसी उनकी धारणा होती है ।

मारवाड़ के लेखक मुख्यतया 'व' पर विशेष आधार रखते हैं। अर्थात् लिखते-लिखते किसी काम के लिए उठना हो अथवा लेखनकार्य बन्द करना हो तो 'व' आने पर उठते हैं। अथवा किसी कागज में 'व' लिखकर उठते हैं।

### ताड़पत्रों पर लिखे जानेवाले अङ्कों<sup>२</sup> :

भिन्न-भिन्न देशीय ताड़पत्रीय पुस्तकों, शिलालेखों आदि में प्रयुक्त अङ्कों की संपूर्ण माहिती, उनकी आकृति (संरचना) आदि 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' में दी गई है। अतः संपूर्ण परिचय चाहनेवाले वाचकों को इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए। यहाँ मात्र सामान्य परिचय देने की खातिर जेसलमेर, पाटण, खंभात, भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट पूना आदि में विद्यमान ताड़पत्रीय पुस्तकों में प्राप्त होनेवाले कुछ अङ्कों का उल्लेख निम्नोक्त है<sup>३</sup> :

#### अंश अंकी

१ = १, ॐ, ॐ, ॐ, श्री, श्री

२ = २, न, सि, सि, श्री, श्री

३ = ३, मः, श्री, श्री, श्री

४ = क, क, क, का, क, का, क, का, क, का, क, का, क, का, क, का

५ = ल, ल, ल, ल, ल, ल, ल, ल, न, ना, ला, ला, ला, ला

६ = फ, फ, फा, फा, फ, फ, फा, फा, फ, फ, फा, फा

७ = घ, घ, या, या

८ = ङ, ङ, जा, जा, ङ

९ = ॐ, ॐ, ॐ



६११६ अंको

- १ = ल, लं.  
 २ = घ, घा.  
 ३ = ल, ला.  
 ४ = ष, षं, षा, षां.  
 ५ = ॐ, ॐ, ॐ, ॐ.  
 ६ = षु, षुं.  
 ७ = षू, षूं, षू, षूं.  
 ८ = ॐ, ॐ.  
 ९ = ॐ, ॐ, ॐ, ॐ.  
 ० = ०

१११६ अंको

- १ = सु, सुं.  
 २ = सू, सू, सू.  
 ३ = स्त्रा, स्त्रा, स्त्रा.  
 ४ = त्त्रा, त्त्रा, त्त्रा.  
 ५ = त्तो, त्तो, त्तो.  
 ६ = स्त्रं, स्त्रं, स्त्रं.  
 ७ = स्त्रः, स्त्रः, स्त्रः.

जिस प्रकार आज के समय में प्रचलित अङ्क एक लाइन में लिखे जाते हैं वैसे ताड़पत्रीय सांकेतिक अंक एक लाइन में नहीं लिखे जाते, बल्कि ऊपर-नीचे लिखने का विधान है, यथा—

१४४	सु	१
	प्ता	४
	पर्क	४

यहाँ इकाई, दहाई, सैकडा अंकों में १, २, ३ आदि संख्याओं का पृथक्-पृथक् उल्लेख करने का प्रमुख कारण सिर्फ इतना है कि—एक, दो, तीन आदि इकाई संख्याएँ लिखनी हों तो इकाई अंकों में दिए गए एक, दो, तीन आदि लिखें। दस, बीस, तीस आदि दहाई संख्या में एक, दो, तीन इस प्रकार नौ

तक लिखना हो तो दहाई संख्या में बताए अनुसार एक, दो, तीन लिखें और सौ, दो सौ, तीन सौ आदि शतक संख्या में एक, दो, तीन आदि लिखना हो तो शतक अंकों में लिखे हुए एक, दो, तीन आदि लिखें। इकाई, दहाई में शून्य आये तो वहाँ शून्य ही लिखते हैं।

दहाई संख्या के बाद आनेवाली इकाई संख्या और शतक संख्या के बाद आनेवाली दहाई तथा इकाई संख्या में एक, दो, तीन लिखना हो तो इकाई, दहाई अंकों में से लिखते हैं।

आज जो ताड़पत्रीय पुस्तक-भण्डार विद्यमान हैं उनमें, मेरे ध्यान में है जहाँ तक, छःसौ पृष्ठ (पेज) नम्बर तक वाली पुस्तकें उपलब्ध हैं; इससे अधिक पृष्ठ वाली पुस्तक एक भी उपलब्ध नहीं है। अधिकतर पुस्तकें तीन सौ पेज तक अथवा कुछ पुस्तकें इससे अधिक पृष्ठवाली मिल सकती हैं। किन्तु पाँचसौ से अधिक पृष्ठवाली पुस्तक मात्र पाटण स्थित संघवी का पाडा के ताड़पत्रीय पुस्तक भण्डार में एक ही देखी है; जो त्रुटित और अस्तव्यस्त हो गई है। छःसौ से अधिक पृष्ठवाले ताड़पत्रीय ग्रन्थ को सुरक्षित रखना अति कठिन काम है, यह स्वाभाविक ही है, अर्थात् इससे अधिक पृष्ठ का ग्रन्थ नहीं लिखा जाता हो ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। तथापि लगभग चारसौ वर्ष पुराने एक पत्र में ताड़पत्रीय अंकों का लिखित उल्लेख मिला है; जिसमें सातसौ पृष्ठ संख्या तक का अङ्कन किया गया है। अतः उस व्यक्ति ने सातसौ पृष्ठ अथवा इससे अधिक पृष्ठ संख्यावाला ग्रन्थ देखा हो ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

**पुस्तकरक्षण—**हस्तलिखित पुस्तकों की स्याही में गोंद का

मिश्रण होने के कारण वर्षा ऋतु में पृष्ठ चिपक जाने का भय रहता है, अतः वर्षा ऋतु में पुस्तकों को सीलन (भेज) तथा हवा-पानी से बचाकर सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए। इसी लिए हस्तलिखित पुस्तकों को मजबूत बाँधकर कागज, चमड़ा अथवा लकड़ी के खोल में रखकर कबाट या मंजूषा (पेटी) में सुरक्षित रखा जाता है। अतः विशेष प्रयोजन के बिना वर्षा ऋतु में वर्षात नहीं हो रही हो तब भी लिखित पुस्तक-भण्डारों को खोला नहीं जाता है। जो पुस्तक बाहर रखी हो उसके खास उपयोगी भाग के अलावा शेष पुस्तक को पैक करके सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है। किसी पुस्तक की स्याही में गोंद की मात्रा आवश्यक प्रमाण से अधिक हो तो ऐसी पुस्तक को बाहर निकालने पर उसके पृष्ठों के चिपकने का भय लगता हो तो उसके पन्नों पर गुलाल छँट दें (डाल दें) जिससे पन्ने चिपकने का भय कम हो जायेगा।

**चिपकी हुई पुस्तक**—वर्षाऋतु में यदि किसी कारणवश पुस्तक को नमीयुक्त हवा लगने के कारण उसके पन्ने चिपक गये हों तो उस पुस्तक को पानी के मटके रखनेवाले स्थान पर जहाँ हवा लगती रहे अथवा पानी भरने के बाद खाली की हुई मटकी अथवा घड़े में रख दें। कुछ समय बाद उस पुस्तक को हवा लगने के बाद एक-एक पन्ने को फूँक मारकर धीरे-धीरे उखाड़ते जायें। यदि पुस्तक अधिक चिपक गई हो तो उसे कई बार नमी वाले स्थान में रखें, परन्तु पन्नों को अलग करने में जल्दी न करें। यह उपाय कागज की पुस्तक हेतु उपयोगी है।

यदि ताड़पत्रीय पुस्तक चिपक गई हो तो एक कपड़े को पानी में भिगोकर उसे पुस्तक के आस-पास लपेटें। जैसे-जैसे पन्ने शीलन (नमी, हवामान) वाले होते जायें वैसे-वैसे उखाड़ते

रहें। ताड़पत्रीय पुस्तक की स्याही पक्की होने के कारण उसके आस-पास भीगा हुआ कपड़ा लपेटने पर उसके अक्षर खराब होने का भय नहीं रहता है। ताड़पत्रीय पन्नों को अलग करते समय उनके परत न उखड़ें इस बात का विशेष ध्यान रखें।

पुस्तक का किन-किन चीजों से रक्षण करें इस हेतु कुछ लहियाओं ने पुस्तकों के अन्त में भिन्न-भिन्न श्लोक लिखे हैं जो थोड़े बहुत शुद्धाशुद्ध होने के बावजूद खास उपयोगी हैं, अतः उनका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ :

जले रक्षेत् स्थले रक्षेत्, रक्षेत् शिथिलबन्धनात् ।  
मूर्खहस्ते न दातव्या, एवं वदति पुस्तिका ॥१॥

अग्ने रक्षेज्जलाद् रक्षेत्, मूषकाच्च विशेषतः ।  
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत् ॥१॥

उदकानिलचौरेभ्यो, मूषकेभ्यो हुताशनात् ।  
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत् ॥१॥

भग्नपृष्ठिकटिग्रीवा, वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।  
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत् ॥१॥

इनके अलावा कई लेखकों ने अपनी निर्दोषता व्यक्त करने हेतु भी श्लोक लिखे हैं :

श्रदृष्टदोषान्मतिविभ्रमाद्वा,  
यदर्थहीनं लिखितं मयाऽत्र ।  
तन्मार्जयित्वा परिशोधनीय,  
कोपं न कुर्यात् खलु लेखकस्य ॥१॥

यादृशं पुस्तकं दृष्टं, तादृशं लिखितं मया ।  
यदि शुद्धमशुद्धं वा, मम दोषो न दीयते ॥१॥

**ज्ञानपञ्चमी**—श्वेताम्बर जैन समाज में कार्तिक शुक्ल पञ्चमी को ज्ञानपञ्चमी के नाम से जाना जाता है। इस तिथि का माहात्म्य प्रत्येक शुक्ल पञ्चमी से अधिक माना जाता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि वर्षाऋतु के कारण पुस्तक-भण्डारों में प्रविष्ट नमीयुक्त हवा पुस्तकों को हानि न पहुँचाए इस हेतु उन पुस्तकों को धूप दिखाना चाहिए, जिससे भेज (नमी) नष्ट हो जाये और पुस्तकें अपने स्वरूप में विद्यमान रहें। वर्षाऋतु में पुस्तक-भण्डारों को दरवाजा बन्द करके रखने के कारण दीमक आदि लगने की संभावना भी धूल-कचरा आदि साफ होने पर दूर हो जाती है। यह महान् कार्य हमेशा एक ही व्यक्ति की देख-रेख में होना चाहिए जिससे किसी प्रकार की हानि न हो। अतः कुशल जैनाचार्यों ने दरेक व्यक्ति को ज्ञानभक्ति का रहस्य और उससे होनेवाले लाभों का बोध कराकर इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। उस दिन लोग स्वकीय गृहकार्य अथवा व्यापार-धन्धों को छोड़कर यथाशक्य आहारादि का नियम लेकर पोषधव्रत स्वीकार कर पुस्तकरक्षा के महान् पुण्यकार्य में भागीदार बनते हैं।

वर्षा के कारण पुस्तकों एवं पुस्तक-भण्डारों में आई हुई भेज को दूर करने हेतु सबसे सरस, अनुकूल और श्रेष्ठ समय कार्तिक मास ही है : इसमें शरदऋतु की प्रौढ़ावस्था, सूर्य की प्रखर किरणें तथा वर्षाऋतु की भेजयुक्त हवा का अभाव होता है।

जिस उद्देश्य से उक्त तिथि का माहात्म्य वर्णित किया गया था उसे आज भुला दिया गया है। अतः पुस्तक-भण्डारों की देख-रेख करना, साफ-सफाई करना आदि लुप्तप्रायः हो गया है। मात्र इसके स्थान पर आजकल श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनों की बस्तीवाले

अधिकतर गाँवों में 'साँप गया अने लीसोटा रह्या' अर्थात् (साँप के निकल जाने के बाद लकीर रह जाती है ) इस कहावत सदृश कुछ पुस्तकों की आडम्बर पूर्वक स्थापना करके पूजा, सत्कार आदि करने का रिवाज प्रचलित है ।

मुंबई की कच्छी जैन दशा ओसवाल की धर्मशाला में आज भी पुस्तकों की प्रतिलेखना, स्थापना, तपास (रख-रखाव) आदि विशेष विधिपूर्वक की जाती है जिससे अन्य गाँवों के बजाय उक्त तिथि का उद्देश्य यहाँ कुछ हद तक पूर्ण होता दिखाई देता है । अस्तु; आज जो कुछ भी होता हो, तथापि इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि साहित्य-रक्षण हेतु जैनाचार्यों ने जिस युक्ति का आयोजन किया है वह अत्यन्त नेहयुक्त है ।

दिगम्बर जैन ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी को ज्ञानपञ्चमी कहते हैं; ऐसा मैंने सुना है । यदि यह बात सही हो तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पुस्तक-रक्षण की दृष्टि से कार्तिक शुक्ल पञ्चमी अधिक योग्य है ।

**उपसंहार—**मुद्रणयुग में लिखित साहित्य को पढ़नेवालों तथा उसके प्रति आदरपूर्वक दृष्टि रखनेवालों का अकाल न पडे इस हेतु हमारे 'गुजरात विद्यापीठ' और 'गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर' के निपुण संचालक योग्य व्यक्तियों को इस दिशा में भी प्रेरित करें; इस भावना के साथ मैं अपने लेख को विराम देता हूँ ।\*

( 'पुरातत्त्व' त्रैमासिक, अषाढ, सं. १९७९ )

## टिप्पण :

१. पुरातन हस्तलिखित पुस्तकों के अन्त में प्राप्त होने वाले “सं. ११३८ वैशाख शुदि १४ गरौ लिखितं श्रीमदणहिलपाटके वालभ्यान्वये कायस्य भाईलेन” इत्यादि अनेक उल्लेखों पर से हम देख सकते हैं कि भारतवर्ष में कायस्थ, ब्राह्मण आदि जाति के अनेक कुटुम्ब इस व्यवसाय द्वारा स्वकीय जीवन-निर्वाह कर सकते थे । इसी कारण हमारी लेखनकला प्रौढावस्था तक पहुँच सकी ।
२. यह मात्र गुजरात को ही लक्ष्य में रखकर लिखा गया है ।
३. ये ताड़पत्र साफ करने के बाद भी 2¾ फुट से अधिक लम्बे और 3½ इंच के बराबर चौड़े रहते हैं । ऐसे ताड़पत्रों पर लिखे हुए कई ग्रन्थ पाटण के संघवीना पाडा के भण्डार में विद्यमान हैं ।
४. बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखित ताड़पत्र आज भी इतने सुकुमार (कौमल) हैं कि उनको मध्यभाग से पकड़कर उठाये तो इनके दोनों तरफ का भाग स्वयमेव झुक जाये ।
५. देवर्धिगणि क्षमाश्रमण, जो जैनसूत्र की वलभीवाचना के सूत्रधार थे, उन्होंने वलभी-वळा में पुस्तक-लेखन का कार्य ताड़पत्रों पर ही प्रारम्भ किया था ऐसा सुनते हैं । यह प्रारम्भ वीर संवत् ९८० में किया गया था ।
६. काजल में गौमूत्र डालकर उसे पूरी रात भिगो कर रखें; यह भी काजल की चिकनाई को नष्ट करने की एक विधि है । गौमूत्र उतना ही डालें जितने से उपयोग में लिया गया काजल भीग जाये । शराव (रेती) में मर्दन करके काजल की चिकनाई को दूर करने की विधि के बजाय यह विधि अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे वस्त्र, शरीर आदि खराब होने का बिलकुल भय नहीं रहता । परन्तु यदि स्याही में लाक्षारस डालना हो तो इस गौमूत्र का प्रयोग व्यर्थ समझें, क्योंकि गौमूत्र क्षारस्वरूप होकर लाक्षारस को फाड़ देता है ।

७. यह श्लोक और इसके टबा (टब्बा) के अनुवाद का जो पत्रा मेरे पास है उसमें श्लोक और श्लोक से भी अधिक अस्त-व्यस्त एवं असंगत इसका अनुवाद है; अतः उसके सारमात्र का ही यहाँ उल्लेख किया है ।
८. काजल को भिगोदे इतने गौमूत्र में और हीराबोळ तथा गौंद का सामान्य पतला रस हो उतने पानी में पूरी रात भिगोने के बाद, तीनों को तांबे अथवा लोहे की कढ़ाई में कपड़े से छानकर एक साथ मिलाकर ताँबे का खोल चढाए हुए लकडी के घुट्टे द्वारा खूब घोंटें । जब घोंटते-घोंटते मिश्रण का पानी लगभग स्वयं सूख जाये तब मिश्रण को सुखा दें । इसमें पानी डालकर भीगने के बाद घोंटने पर लिखने योग्य स्याही तैयार होती है । यदि भाँगरा का रस मिले तो उपर्युक्त तीनों वस्तुओं के साथ ही डालें जिससे स्याही अत्यन्त चमकिली और तेजयुक्त तैयार होगी ।
९. लाक्षारस का विधान—साफ पानी को खूब गरम करें । जब वह पानी खदकने लगे तब उसमें लाख का चूर्ण डालते जायें और हिलाते जायें, जिससे लुग्दा न बने, ताप सख्त करें । फिर दस मिनिट बाद लोदर का बुरादा मिलाएँ । तदनन्तर दस मिनिट बाद टंकणखार डालें । फिर उस पानी से अहमदाबादी चोपडा (रजिस्टर) के कागज पर लाइन खींचकर देखें । यदि स्याही पत्रे के दूसरी तरफ नहीं फूटे तो उसे अग्नि पर से उतार लें और ठण्डा होने के बाद उपयोग में लें । इस पानी को ही लाक्षारस समझें । दरेक वस्तु का वजन निम्नोक्त प्रमाण में होना चाहिए : पावशेर सादा पानी, रु. १ भार पीपल की सूखी हुई लाख जिसे दानालाख कहते हैं । रु. ०।॥ भार पठानी लोदर और एक अन्नी भार टंकणखार । जितने प्रमाण में लाक्षारस बनाना हो उतने ही प्रमाण में दरेक वस्तु का प्रमाण समझें । यदि ताड़पत्रीय स्याही के लिए लाक्षारस तैयार करना हो तो उसमें लोदर के साथ लाख से पोना हिस्सा मजीठ डालें, जिससे अधिक रसदार लाक्षारस



तैयार होगा। कहीं-कहीं टंकणखार के स्थान पर पापडिया अथवा साजीखार डालने का विधान देखने को मिलता है।

१०. बियारस—बिया नामक वनस्पति विशेष की लकड़ी के छिलकों का भुक्का (चूर्ण) करके उसे पानी में उबालने पर जो पानी प्राप्त होता है उसे बियारस समझें। इस रस को स्याही में डालने पर स्याही के कालेपन में अत्यन्त वृद्धि होती है। परन्तु ध्यान रहे कि यदि वह रस आवश्यक प्रमाण से अधिक मात्रा में स्याही में डल जाये तो स्याही बिलकुल नकामी हो जाती है, क्योंकि इसका स्वभाव शुष्क होने के कारण इसमें पड़े हुए गोंद की चिकनाई का जड़मूल से नाश कर देता है। अतः उस स्याही द्वारा लिखा हुआ लिखान सूख जाने पर तुरन्त ही स्वयं उखड जाता है।
११. सोने-चाँदी की स्याही द्वारा लिखने हेतु हरिताल-सफेदा, थोडा अधिक प्रमाण में गोंद डालकर तैयार करें।
१२. ताड़पत्रीय अङ्क अर्थात् ताड़पत्रीय पुस्तक के पृष्ठों की गणना करने हेतु लिखे गये अङ्क यथा—प्रथम पृष्ठ, द्वितीय पृष्ठ, पाँचवाँ, दसवाँ, पचासवाँ सौवाँ पृष्ठ इत्यादि।
१३. 'पुरातत्त्व' में दिए गये अङ्कों के बजाय यहाँ पू. मु. श्री पुण्यविजयजी महाराज कृत 'जैन चित्रकल्पद्रुम' में मुद्रित 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला' लेख के साथ दिये गये अङ्क (उन अङ्कों के दो ब्लॉक) इस ग्रन्थ में मुद्रित किये गये हैं—संपादकगण।
- ★ प्रस्तुत लेख की सामग्री और इससे सम्बन्धित विविध जानकारीयाँ मैं मेरे वृद्ध गुरुप्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी महाराज और गुरुजी श्री चतुरविजयजी महाराज द्वारा प्राप्त कर सका हूँ, इस हेतु उनका आभार मानता हूँ।



प्रकाशक

ला.द. भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर